पेरिस
१४ दिसम्बर २००७

संदेश संख्या – १३०

अवधूत–गीता

अवधूत गीता को दक्षिण भारत में अधिक आदर प्राप्त है । इससे आकस्मिक रूप से लिए गये कतिपय अंशों पर ध्यान एवं मनन करना काफी रूचिकर होगा क्योंकि यह अन्तर्चेतना के अद्वैत आयाम को प्रकट करता है । क्रियावानों के स्वाध्याय के लिए अच्छी सामग्री के रूप में इसे प्रस्तुत किया जा रहा है :

१. चैतन्य स्वयं में, स्वयं द्वारा, सर्वतोभावेन परम पवित्र है । मन के उपयोग से उसका स्पष्ट बोध नहीं होता । तथाकथित ''गुरु'' से प्राप्त उधारी ज्ञान से वह प्रकट नहीं होता । बन्धन और मुक्ति के सम्बन्ध में उपलब्ध सभी शिक्षाओं से वह परे है ।

२. जल के एक पात्र में दूसरा जल मिलाने से जिस तरह दोनों अविभाज्य रूप से मिल जाते हैं, उसी तरह प्रत्यक्ष बोध की पवित्र क्रिया में न कोई कर्त्ता होता है और न ही कर्म ।

३. हे प्रिय, अद्वैत रूपी कालातीत महान अमृत का पान करें ।

४. चेतना जब आसक्ति और पहचान के दोषों से मुक्त होती है तब कोई दुःख नहीं होता ।

५. अवधूत शून्यता के पवित्र मन्दिर में अडिग समता में होता है ।

६. खेल खेलना केवल इसलिए न छोड़ दें कि आपने उसमें महारत हासिल कर ली है । खिलाड़ी–भाव से मुक्त रहकर खेल जारी रखें।

७. गुरू–प्रक्रिया द्वारा सिखाये गए सत्य को देखें न कि गुरु–व्यक्तित्व को ।

८. जिस तरह जल में बुलबुले उत्पन्न होते हैं और गायब हो जाते है उसी तरह विचारों एवं संकल्पों को उत्पन्न और गायब होने दें ।

९. पूर्ण और दोषरहित एकमात्र चैतन्य है ।

१०. चैतन्य की साझेदारी तो सम्भव है किन्तु उसे सिखाने या सीखने का कोई तरीका नहीं ।

११. आकाशवत् शिव ही चैतन्य है ।

१२. चैतन्य ''मैं'' द्वारा कल्पित भाग्य को नहीं स्वीकार करता है और न ही ईश्वर को ।

१३. चैतन्य न स्वर्ग पहचानता है और न ही नरक, न देव न दानव, न विभाजन न भगवत्ता । मन द्वारा निर्मित भगवान धोखा है ।

१४. चैतन्य में कुछ भी जोड़ा या घटाया नहीं जा सकता । उसका न आह्वान हो सकता है और न ही पूजा । धर्मग्रन्थ और मन्त्र उस तक नहीं पहुँच सकते।

१५. चैतन्य की समझदारी में न कुछ पाप है और न ही कुछ पुण्य ।

१६. चैतन्य प्रभावों एव आदेशों से परे है, जानकारी और अनुभव से परे है, आसक्ति और विरक्ति से परे है ।

१७. क्षुद्र ''मैं'' का चैतन्य से कोई सम्बन्ध नहीं । ''मैं'' की समाप्ति ही चैतन्य का उदय है ।

१८. चैतन्य ही ध्यान है । ''मैं'' द्वारा ध्यान करना, ध्यान से दूर होना है ।

१९. चैतन्य किसी भी प्रकार के कर्मकाण्डीय प्रावधानों का अनुमोदन नहीं करता और वह न ही कर्मकाण्डों का विरोधी है ।

२०. चैतन्य अनाम और अरूप है फिर भी उसे नामों एवं रूपों में देखा जा सकता है ।

२१. चैतन्य ''मेरा'' और ''तेरा'' से मुक्त है ।

२२. चैतन्य काल और कार्य–कारण से परे है ।

२३. चैतन्य आध्यात्मिक और धर्मनिरपेक्ष के वर्गीकरण से परे है ।

२४. चैतन्य सभी कुछ का त्याग करता है, त्याग का भी ।

२५. मन शोक है और निर्मन (चैतन्य) उत्सव ।

२६. जीवन या चैतन्य समझदारी की ऊर्जा है और वह किसी प्रकार का धार्मिक पाप या पुण्य नहीं जानता । ये सब तो मन और उसके मिथ्याभिमान एवं निहित स्वार्थ की उपज है ।

२७. चैतन्य का कोई विचार नहीं होता ।

२८. अवधूत सहजावस्था के परमानन्द में डूबा होता है क्योंकि उसके मन की गतिविधि का निर्विकल्प में विलय हो चुका होता है ।

२९. अवधूत ध्यान में हो सकता है और नहीं भी हो सकता, वह पूजा कर सकता है और नहीं भी कर सकता है ।

अवधूत शिव और निर्गुण (गुणातीत) होता है, अर्थात् वह उस चित्तवृत्ति के सभी उपादानों से मुक्त होता है जिसे व्यक्ति ''मैं'' और ''मेरी'' चेतना के द्वैत की प्रक्रिया से अनुभव करता है । द्वैत की यही प्रक्रिया विभेदकारी चित्तवृत्ति ''मैं'' को प्रोत्साहित कर अकेलापन के दुःख एवं पीड़ा को उत्पन्न करती है । और उसी से, सांसारिक एवं ''धार्मिक'' मनोरंजन व उत्तेजना की खोज द्वारा अकेलापन से बचने का अन्तहीन प्रयास शुरु होता है किन्तु इनसे अकेलापन और बढ़ता ही जाता है । इस तरह मानसिक बोझों से मुक्त अस्तित्वमय जीवन जीने की वास्तविक गुणवत्ता, ''मैं'' के अन्तहीन प्रयासों एवं विरोधाभासों में पूर्णतया खो जाती है ।

अ = अनासक्त, व = वर्जित (त्यक्त)
धू = धूल सदृश, त = तत् (अस्तित्व)
यही है अवधूत ।

।। जय गुणातीत अवधूत ।।
।। काशी विश्वनाथ गंगे ।।